International Journal of Applied Research 2022; 8(4): 443-449

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2022; 8(4): 443-449
www.allresearchjournal.com
Received: 10-02-2022
Accepted: 14-03-2022

ममता कुमारी
शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग ल०ना०मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
ममता कुमारी
शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग ल०ना०मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

शिवमूर्ति के कथा साहित्य में धर्म-संस्कृति

ममता कुमारी

सारांश
शिवमूर्ति एक ऐसे कथाकार हैं, जो अपनी रचनाओं में भारतीय धर्म और संस्कृति का यथार्थपरक विवेचन किया है। शिवमूर्ति की कहानियों में यद्यपि हिन्दू-धर्म एवं संस्कृति का उल्लेख किया गया है, परंतु लेखक कहीं से भी धार्मिक कट्टरता के प्रचारक नहीं लगते हैं। 'कसाईबाड़ा', 'तिरिया चिरत्तर' 'केशर कस्तूरी', सिरी उपमा जोग' नामक कहानी में हिन्दू-धर्म संस्कृति का परिचय मिलता है तो उनके उपन्यास 'त्रिशूल' में दोनों धर्मखलंवियों की कट्टरता का विवेचन किया गया है। लेखक अपने धर्म तथा संस्कृति के प्रति अपनी सजगता को सर्वत्र व्यक्त किया है।

कूट शब्द: शिवमूर्ति, धर्म-संस्कृति, 'कसाईबाड़ा', 'तिरिया चिरत्तर' 'केशर कस्तूरी'

प्रस्तावना
भारतीय संस्कृति मूलत: कृषि संस्कृति है, जिसकी पृष्ठभूमि सनातन ग्राम जीवन है। इस संबंध में ग्राम-संस्कृति को ही भारतीय संस्कृति के रूप में परिभाषित करना असंगत नहीं होगा। किन्तु नये कथा-साहित्य में चित्रित संस्कृति स्थिति को देखकर लगता है, कि अंतर्वृत्ति और बाह्य-संगठन दोनों ही दृष्टि से ग्राम-जीवन का यह पक्ष अत्यंत उर्ध्वस्त और मात्र-रूढ़ियों के समुच्चय के रूप में अवशिष्ट रह गया है। उसमें आदर्शों का समाविष्ट रूप संपूर्णत: खो गया। भारतीय संस्कति का प्रारंभिक स्वरूप ग्राम ही रहे हैं। ग्रामों से ही आगे नगर संस्कृति हुई है। कहा जाता है कि युग ही संस्कृति का है और संस्कृति जिसका संबंध ईश्वर, धर्म, अध्यात्म, नैतिकता और अंशत: कर्मकांड आदि से है, नयी वैज्ञानिक भौतिकवादी उपलबधियों की उपस्थिति में अब पुराकाल-सी प्रेरणा अथवा उत्तेजना प्रदान करने वाली नहीं रही। व्यक्ति का जीवन आमूलमूल परिवर्तित हो गया है। उसके मूल्य बदल गये हैं और परिप्रेक्ष्य परिवर्तित हो गये हैं। उसके मानदंड भी संस्कृतिमूलक न होकर सभ्यतामूलक हो गये हैं। यदि संस्कृति का स्रोत ग्राम-जीवन है तो सभ्यता का स्रोत नगर-जीवन है। विज्ञान के अकूत वैभव और वरदान से गरिमाशाली प्रसारशील नगर गाँवों पर द्रुतगति से छाते चले जा रहे हैं और उनकी चपेट में ग्राम टूटते जा रहे हैं। सांस्कृतिक अवमूल्यन के नये आयाम गाँवों के नगरीकरण के परिप्रेक्ष्य में उद्घाटित हो रहे हैं। धर्म, दर्शान, विश्वास, साहित्य, संस्कार, स्नान, नदी, तीर्थ, शिक्षा-दीक्षा, वर्णमूर्ति, जीविका, मंदिर, त्यौहार, विवाह, संस्कार रीति, पौषाक, पूजा, गीत, कला, कृषि, भोजन, शास्त्र, वाद्य और नृत्यादि के सांस्कृतिक क्षेत्र आधुनिक जीवन-क्रम में एक मनोरजन के साधन मात्र या अंध-परंपरा

पालन है, उनमें जीवन के प्रति किसी गहन-गंभीर दृष्टिकोण की स्थिति नही; न ही, किसी लौकिक-पारलौकिक शैली संवेदित हैं।

परंपराएँ ही संस्कृति हैं जो कालान्तर में उस समाज विशेष के मूल के रूप में जाने जाते हैं। कृषि कार्य के बाद मानवीय समाज में संस्कारिक परिवार का, समुदाय का निर्माण हुआ है और यहीं से व्यक्ति के संस्कारिक मूल्य निर्मित हुए। हिन्दी उपन्यासों में प्रेमचंद जी के समय से ही ग्रामों की और लेखकों ने दृष्टि डाली हैं। ग्रामों का कथानक बनाया है और ग्रामीण जीवन-मूल्य उपस्थित किये हैं।

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात भारतीय ग्रामीण समाज, धर्म तथा सांस्कृतिक मूल्यों-मान्यताओं में काफी परिवर्तन आया। प्रेमचंद के बाद रेणु तथा रेणु के बाद उस परंपरा में शिवमूर्ति ने अत्यंत सार्थक लेखन किया है। कुछ लोग शिवमूर्ति को प्रेमचंद के बजाय रेणुजी के अधिक नजदीक पाते हैं, जबकि गंभीरतापूर्वक विचार करने पर शिवमूर्ति प्रेमचंद और रेणु की परंपरा में होते हुए भी अलग दिखते हैं। उनकी कहानियों की रचनात्मकता तथा उद्देश्य कुछ अलग दृष्टिगत होती है। हिन्दी कहानियों में शिवमूर्ति की सार्थक उपस्थिति उनकी कहानी 'कसाईबाड़ा' से मानी जाती है। इस कहानी में भारत के ग्रामांचलीय जनमानस और भावनाओं की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। कहानी में निहित व्यंग्य अत्यंत सार्थक प्रतीत होता है। फणीश्वर नाथ रेणु की कहानियों में मिलने वाले नेहरूयुगीन आशावाद आज़ैर उल्लास के स्थान पर शिवमूर्ति की कहानी में सत्ता से मोहभंग की स्थिति उजागर हुई है। लेखक को बखूबी पता है कि देश की आजादी केवल सत्ता को हस्तांतरण है। देश की आज जनता को इससे कोई फर्क नहीं पड़ने वाला है। वे पहले भी गुलाम और शोषित थे और वे अब भी गुलाम और शोषित है। उनकी बाद में रचित कुछ कहानियों मे अवधी संवादों के साथ अवध-प्रांत की संस्कृति की झलक मिल जाती है। रेणु जी ने रिपोर्ताज-शैली में अपनी अधिकांश कहानियों का निर्माण किया है, जबकि शिवमूर्ति के कथाकार की सृजनशीलता लोक से मिली अनगढ़ स्मृतियों का संचित रूप है, जो सरस और कलात्मक रूपों में हमारे समक्ष उपस्थित होता है।

वर्जित अथवा अबतक अकथित कथा-प्रसंगों को उद्घाटित करने में शिवमूर्ति अग्रणी रचनाकार हैं। उनकी सर्वप्रसिद्ध कहानी 'कसाईबाड़ा' तद्युगीन आपातकाल की उपज है। असहिष्णु तथा भौतिक एवं स्वार्थपरक सत्ता के खिलाफ सक्रिय अभिव्यक्ति इस कहानी में प्राप्त होती है। उनकी कुछ अन्य रचनाओं में यथा-त्रिशूल, 'आखिरी छलांग' 'बनाना रिपब्लिक' आदि में अकथ सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक संदर्भों का उद्घाटन हुआ है।

प्रेमचंद की भाँति शिवमूर्ति भी एक ऐसे सजग कथाकार हैं, जो सामाजिक राजनीतिक विमर्शकार की भूमिका निभाते हैं। शिवमूर्ति की कतिपय कहानियाँ समाज के नकारात्मक राजनीतिकरण तथा अतीतोन्मुख यथास्थितिवादी मानसिक समूहों की जो अपने नैतिक औचित्य-अनौचित्य की परवाह किये बिना दूसरे के अधिकारों का दमन करते हैं।

अभिव्यक्ति के खतरे के बावजूद शिवमूर्ति का कथाकार सोच-समझ कर अपने पाठकों के लिए सत्ता-व्यवस्था का प्रतिरोध करता है। अपनी परंपरा से कभी भी कुछ भी ले सकते हैं। आधुनिक मनोविज्ञान से लेकर प्रेमचन्द पूर्व की कहानियों की नाटकीयता, प्रेमचन्द की कहानियों में प्राय: मिलने वाला घटना-कौतुक, रेणु जी की आंचलिकता, मोहन राकेश की कहानियों में उपलब्ध रचनात्मक, तटस्थता तथा निर्मल वर्मा की दृश्यात्मकता, एवं काव्यात्मक सजीनता के साथ ही नयी कहानी पूर्व का चरमोत्कर्ष विधान सब कुछ शिवमूर्ति की कहानियों में गुंफित होकर अभिव्यत हुई है, जिसके कारण उनकी कहानियाँ विशिष्ट बन गयी हैं। शिवमूर्ति अधिकांश कहानियाँ उनके व्यक्तिगत अनुभव पर आधारित हैं। शिवमूर्ति अपने ही अंतस में रची-बसी संवेदनात्मक अनुभूतियों को कथा में रूपांतरित करने वाले सर्जक हैं। उनकी कई कहानियों के कथा-सूत्र तो उनके आत्म कथ्य ही प्रतीत होते हैं- यथा सिरी उपमा जोग, केशर-कस्तूरी, भारतनाट्यम, 'ख्वाजा', ओ मेरे पीर। आदि साथ ही 'त्रिशूल नामक उपन्यास भी उनके अनुभव पर ही आधृत है।

इससे लाभ यह हुआ है कि वे...बहुत कुछ ऐसा कह पाए हैं, जो उनके पूर्ववर्ती कथाकारों में नहीं थी, लेकिन इससे नुकसान यह हुआ है कि अत्यंत ही लोकप्रिय या बहुत पढ़े जाने के बावजूद वे कुछ अनिक्षुओं द्वारा आंचलिक आस्वादधर्मिता के साथ लिखने वाले रोचक लेखक माना लिए गए हैं, ऐसा संभवत: व्यंग्य-हास्य और नाटकीयता की कलात्मक भंगिमा के कारण भी हुआ है। उनकी कहानियाँ किसी हास्यात्मक मूर्खता की तरह जीवन की गंभीर त्रासदी का भी मजाक उड़ाती चली हैं- अंधेरे का सबसे अधिक कथा-बिम्बन करने वाले इस कथाकार की कई कहानियों में जैसे भारतेन्दु हरिचन्द्र के विख्यात प्रहसन 'अंधेर नगरी' की आत्मा समाविष्ट हुई है। उनमें एक साथ ही बेवसी, घृणा और आक्रोश के मिश्रित रसायनों से चित्रांकन करते हैं। चाहे 'भारत नाटयन' हो या

अकाल दंड उनकी कहानियाँ पाठकीय अतिक्रमण और निष्क्रमण को प्रहसन के शिल्प में प्रतिपादित करती हैं।

सामाजिक और साहित्यिक इतिहास की समानांतरण में विचार करें तो मुक्तिबोध के अभिव्यक्ति-संघर्ष देखा जा सकता है। उनकी कला और कलाकार, अभिव्यक्ति की आजादी पर तमाम प्रतिबंधों के बावजूद अभिव्यक्ति के नए मार्गों की खोज को पसंद करता है।

शिवमूर्ति की अधिकांश कहानियों जीवन तथा समाज की किसी न किसी महत्त्वपूर्ण समस्या पर लोक-विमर्श का एक समानांतर एवं गंभीर पाठ प्रस्तुत करती हुई विकसित हुई है। लोक-चेतना एवं लोक-संस्कृति के साथ ही लोकधर्म के प्रति रचनाकार की सजगता प्रशंसनीय है। आसान तथा आसपास के शब्दों में बोल-चाल में प्रयुक्त लोकोक्तियों तथा मुहावरों के सहारे कहानी सरस बनती चली जाती है। हिन्दी का कोई भी अन्य कथाकार अपने परिवेश, भाषा, संस्कृति आदि के प्रति इतने सजग नहीं दिखते, जितने कि शिवमूर्ति।

शिवमूर्ति की तुलना रेणु के करते हुए जब उन्हें मिथिला की जगह अवधी अंचल के आंचलिक कथाकार के रूप में देखा जाता है तो सिर्फ इतना ही व्यंजित होता है कि हिन्दी-पाठकों और आलोचकों को शिवमूर्ति के कथाकार की ऊँचाई और अवदान की समानता रेणु की प्रतिष्ठा से करने में कोई समस्या नहीं है, शिवमूर्ति के संबंध में यह सर्वविदित है कि उनमें अवध-प्रांत की आंचलिकता है। अवध प्राप्त की भाषा, संस्कृति रहन-सहन, पहनावा, खान-पान, मान्यताएँ, सोच, आस्था, विश्वास, अंध-आस्था आदि का यथार्थ चित्र अंकित किया गया है। 'यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है कि रेणु का आंचलिक साहित्य संवेदन शून्य, मुद्रा आधारित यांत्रिक अर्थग्रस्त धन-पशुओं को निर्मित करने वाली विसंगति, विडंबना, और अलगाव-बोध की शिकार शहरी बाजारू सभ्यता का समानांतर प्रतिरोध पुन: पाठ, वस्तु-विन्यास, विनिमय, और श्रम-सहयोग आधारित सर्वपोषी जिस उदात्त किसान- संवेदना से करती है, उसे आंचलिकता को किसी बाह्य अलंकार की तरह सिर्फ शोभा-कारक कला-मूल्य मानकर, देखने वाले नहीं देख पाते। रेणु की चाहे 'तीसरी कसम' हो या फिर 'लाल पान की बेगम', शहर और बाजार की क्रय-विक्रयवादी मानसिकता से अपरिचित सभी को रागात्मक आत्मीयता तथा सहजीवी समानता की सम्मान भावना से देखने वाली किसान-सभ्यता-संवेदना और मूल्य-दृष्टि ही उनके साहित्य का केन्द्रीय तत्त्व है। यह सत्य है कि आंचलिकता के साथ-साथ जो मानवीय उत्कर्ष शिवमूर्ति में मिलता है, वह रेणु में नहीं, लेकिन शिवमूर्ति को पढ़ते हुए रेण जरूर याद हो आते हैं। उसका आधार है- शिवमूर्ति की कहानियाँ-'सिरी उपमा जोग, 'केशर-कस्तूरी' 'और 'ख्वाजा! ओ मेरे पीर' आदि रिपोर्ताज शैली में लिखे जाने के बावजूद उनकी कहानी 'अकालदंड' और 'तिरिया चरित्तर'। लेखक जीवन के उस यथार्थ की ओर ले जाते हैं, जिसकी ओर अभी तक पाठकों का ध्यान नहीं गया है।

अक्सर यह प्रश्न पूछा जाता है कि कोई भी लेखक क्यों लिखता है। इस संदर्भ में एक सामान्य-सा उत्तर है कि लेखक अपने परिवेशगत यथार्थ को उद्घाटित करने के लिए सृजन करता है। वह समाज को उसके धर्म और संस्कृति की खामियों और खूबियों से परिचित कराता है। शिवमूर्ति इसके बारे में अपना मंतव्य देते हुए कहते हैं कि "मैं आमजन की बेहतरी की कामना से लिखता हूँ। मैं लेखन का उद्देश्य हर प्रकार के शोषण अन्याय, असमानता, अभाव और उत्पीड़न से मुक्ति मानता हूँ। इनके खात्में की जमीन तैयार करना ही अपने लेखन का मुख्य सरोकार मानता हूँ।"[1]

व्यक्ति जिस वर्ग या वर्ण में पैदा होता है, उसी की सोच आदर्श व आकांक्षाओं को क्रमश: अंगीकार कर लेता है। समाज से उसे जो मान-सम्मान, तिरस्कार-घृणा-प्यार, हिंसा या भय मिलते हैं, वहीं उसके अवचेतन का हिस्सा बनता चलता है। प्राय: बदले में वह इन्हीं संवेगों को समाज के लिए वापस करता है, लेकिन विवेकवान होने के चलते वह यदाकदा इसके औचित्य-अनौचित्य पर भी चिंतन करता है। तब राजा के आंगन में पलने वाले की नियति बुद्ध बनने में हो जाती है। हिरणकश्यपु के घर प्रहलाद फलता-फूलता है। नगर सेठ के घर में भारतेन्दु का विकास हो जाता है। लेखक के हिस्से में आमजन की अपेक्षा जो भाव अधिक प्रबल माना जाता है, वह है संवेदना। इसी के करण वह समाज में व्याप्त दुख: दर्द, अन्याय व शोषण को ज्यादा गहराई से महसूस करता है और प्रतिक्रिया करता है। इसी के चलते वह अपने वर्ग के मूल्यों का अतिक्रमण करते हुए भी शोषित-पीड़ित आमजन की चिंता और सरोकार से स्वयं को जोड़ लेता है। सत्ता पक्ष के हितों के खिलाफ खड़ा होना एक लेखक के लिए सदैव ही मंहगा पड़ता रहा है। अपने लेखन की सुरक्षा कर पाना उसके लिए कठिन होता रहा है। इसलिए वर्गांतरण करके आमजन के पक्ष में खड़े होने वाले लेखकों के उदाहराण कम मिलते हैं। इसके विपरीत आमजन के बीच से निकले बहुत से ऐसे लेखक मिल जाएंगे, जिनके लिए सत्ता की सुरक्षा और सम्मान ही काम्य हो गये। वे सत्ता के प्रवक्ता और उनको रिझाने वाले बन गए। जनता से कटकर दरवारी हो गये। शाल-दुशालों और मोहर-अशर्फियों की

चकाचौंध में पड़ गए। संस्कृति साहित्य से लेकर रीतिकाल तक के कवियों पर नजर डालें तो पाते हैं कि उस समय के उन्हीं लेखकों कवियों का लेखन सुरक्षित रह सका तथा सम्मान पाता रहा जो या तो राज-सत्ता की गोद में बैठे गए या धर्म-सत्ता की। वे चाहे कालिदास हो, केशव, बिहारी हो, या तुलसी। इसके विपरीत आमजन के प्रवक्ता के रूप में मध्यकाल के जो नाम बच-बचाकर हम तक पहुँचते हैं उनमें मुख्य हैं- कबीर। एक दो या और भी। इन्हें गहरे दफन करने का कम प्रयास नहीं हुआ, लेकिन इनका अपना संगठन तंत्र इतना ठोस था और वे जन-मानस में इतनी गहराई तक गड़ थे कि उखाड़े नहीं उखड़े। इतने लंबे कालखंड मे क्या गिनती के यही दो-चार नाम शेष रहे होंगे। बाकी की रचनाएँ कहाँ हैं? क्या संस्कृत-साहित्य में ऐसे जन पक्षधर कवि न रहे होंगे। आज उनकी रचनाएँ कहाँ गायब हो गयी। सत्ता पक्ष से न जुड़ने वाले एक संस्कृत कवि ने श्लोक में अपनी दुर्दशा, टूटी झोंपड़ी, चूती-छाजन, पैबंद लगी लूँगी पहने अपनी गृहिणी और अन्न के अभाव में ठंडे पड़े चूल्हें के आस-पास दाँत किट किटाते दौड़ लगाते चूहों का वर्णन करते हुए लिखा है कि हे राजन! मेरा घर ठीक वैसा ही है जैसा कि राजा के विरोधी कवि का होना चाहिए।

'जहाँ राजा की चाटुकारिता करने वाले दस दरबारी कवि रहे होंगे, वहाँ दो-चार जन कवि भी रहे होंगे। उनकी रचनाएँ कहाँ गईं? राजा, चाटुकार, दरबारियों आदि का उपहास करने वाले रहे भी होंगे तो राजा के कोप से बचने के लिए वे छद्म नाम का सहारा लेते रहे होंगे। क्या शूद्रक किसी विद्वान कवि का वास्तविक नाम हो सकता है? प्रभुवर्ग की प्रशंसा करने वाली, उनका मनोरंजन करने वाली रचनाओं को सराहा गया सुरक्षा दी गई और प्रश्न खड़ा करने वाली, विद्रोह जगाने वाली रचनाओं को दबाया गया।'[2]

शिवमूर्ति समकालीन लेखकों की भीड़ में एक ऐसे कथाकार हैं, जिसमें आजादी के बाद के भारत के चहुँमुखी यथार्थ को अपनी रचनाओं में उद्घाटित किया है। समाज से लेकर धर्म और संस्कृति में व्याप्त अंधत्व पर कुठाराघात ही शिवमूर्ति का रचनात्मक उद्देश्य है। यथार्थ के अत्यंत प्रामाणिक तथा सटीक रेखांकन के लिए शिवमूर्ति पृष्ठभूमि के विस्तृत रेखांकन तथा वैषम्य-चित्रण का भी भरपूर सहारा लेते है। कभी-कभी तो इतना अधिक कि उनकी कहानी रिजपोर्ताज का हिस्सा लगने लगती है। उनी अकालदंड कहानी का एक बड़ा हिस्सा अकाल पर रचित मर्मस्पर्शी और जीवंत रिपोर्ताज ही है। ग्रामीण संस्कृति का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं- "यही विधुतधारा दूर-दराज के शहरों को रोशनी से जगमगा रही होगी करोड़ों गैलन पानी से मीलों लंबे पार्कों और विहारों को तर करते रंगीन फब्बारे छूट रहे होंगे, लेकिन यहाँ गाँवों के लिए इस शक्ति का कोई अर्थ नहीं है।"[3] इस प्रकार सिकरेटरी के यौनाचारी भ्रष्ट अतीत के रेखांकन के प्रसंग में वे वेदानंद जैसे उच्च नैतिक मूल्यों वाले धर्म-गुरूओं का परिप्रेक्ष्य संदर्भ भी देते चलते हैं, तो दूसरी ओर पाखंडी-ढोंगी धर्म-गुरुओं के यहाँ मुक्ति तलाशने वाली विधवा गुलाबों सहुआइन ओर सरजूपारी चाची जैसी महिलाओं का भी, जिनके लिए धर्म का आवरण अपनी अतृप्त यौन-इच्छाओं की पूर्ति करने का मानवेतर नहीं, बल्कि समाज समस्त अपमानवीय चोर-दरवाजा है। शिवमूर्ति की सजगता इसमें है कि वे स्वयं धर्म के विवादास्पद, नकारात्मक और अमानवीय संभावनाओं पर प्रत्यक्ष टिप्पणी कहीं नहीं देते। वे बहुत चालाकी से ऐसे संभावना स्थल के आस-पास अपने पाठकों को ले जाकर उकसाकर छोड़ देते हैं। इतना पर्याप्त संकेतों के साथ कि पाठक चाहे तो उन चरित्रों को लेकर अपनी कल्पना से भी कथा-रचना कर सकता है। 'अकालदंड' की गुलाबी सहुआईन और सरजपारी चाची ऐसी ही कथा-चरित्र है, जहाँ प्रसंगनुसार सूचनाएँ देते हुए विषयांतर होने के भय से बचाते-बचते कहानीकार ने संकेतों में ही सही बहुत कुछ कह दिया है। तीर्थयात्रा में अयोध्याजी जा रही सरजूपारी चाची के संवाद की व्यंजना में ही पाठक से बहुत कुछ कह दिया गया है। यथा- "महंत जी कह दिया गया है- यथा- "महंत जी की सेवा से लोटूँ तो मेरे लिए भी एक हाथ-पाँव दबाने वाली चाहिए और भी कोई ऊँच-नीच पड़ जाए तो परदेश है, झेलना पड़ेगा।"[4] काशी-करवट या फिर तीर्थवास के नाम पर वृद्ध-सेवा से पीछा छुड़ाने वाली भारतीय धर्म-व्यवस्था पर व्यंग्य कहानीकार इस भेदक टिप्पणी के साथ करता है- "सुरजी को भी 'मुक्ती' का आसान रास्ता सुझाया था सरजूपारी चाची ने। खुद चलकर आयी थी सुरजी की सास की 'मुक्ती' और सुरजी की सास से 'मुक्ती' दोनों साथ-साथ। सरजू जी में जलसमाधि दिलाकर 'सरंग' का द्वार चौपट खुला मिलता है। इस रास्ते। खुद भगवान रामचन्द्र जी इसी रास्ते गये थे अपने धाम।"[5] लेखक ने इस प्रसंग का उपयोग सुरजी के चारित्रिक उभार के लिए किया है, क्योंकि वह अपनी अंधी सास को पानी में धकेलने से मना करा देती है।

शिवमूर्ति की कई कहानियाँ आधुनिकताबोध के साथ युगीन दंभी मानवीय संबंधों की पुनर्व्याख्या कर भारतीय ग्रामीण संस्कृति के औदात्य का रेखांकन है। शिवमूर्ति की 'अकालदंड' कहानी तो लोकतांत्रिक सत्ता के ही पूँजीवादी मानसिकता के

साथ एक नये शोषक-वर्ग के हाथों में चले जाने की सूचना प्रदान करती है। औद्योगिक पूँजीवाद और सत्ता के नए गठजोड़ ने शोषकों की एक नई पीढ़ी विकसित कर दी है, जो पीढ़ी न केवल अर्थ को सबकुछ समझते हैं, बल्कि देश के सांस्कृतिक पतन को रेखांकित करने में पीछे नहीं हटते हैं। इस नए शोषक-वर्ग के लिए बीते समय की सामंती शक्तियाँ भी उपयोग, सुरक्षा और धनार्जन का संसाधन है। यह उन्हें किस प्रकार अधीनस्त बनाकर उसका दोहन करता है। इसे न केवल रंग-बहादुर के प्रसंग में देखा जा सकता है, बल्कि कहानी से बाहर भी बड़े-बड़े होटलों और मालों के गेट पर सामंत-युगीन शान का प्रतीक माना जाता है। यह कहानी भ्रष्ट नौकरशाही की विलासिता ही नहीं, बल्कि सामंती युग की सामाजिक शक्तियों के पतन, को भी, व्यंजित करने में समर्थ प्रतीत होता है। यहाँ तक कि बाह्य सामाजिक प्रतिष्ठा, भव्य पुरानी गढ़ी, विशाल परिसर, दो नाली बंदूक, भव्य व्यक्तित्व और शानदार मूँछों के होते हुए भी सामंती अतीत का वारिस रंग-बहादुर नए जमाने की सत्ता के प्रतीक तथा भ्रष्ट प्रतिनिधि सेक्रेटरी से उसके अधीन नौकरी कर रही अपनी पहली बेटी को यौन-शोषण से नहीं बचा पाता। कहानी के अंत में सुरजी का प्रतिरोध प्रतीकात्मक रूपों में व्यक्त होता है। सामंती पूँजीवाद के दौर में अकाल गरीबों के लिए त्रासदी हो, तो अमीरों के लिए अकाल एक उत्सव है, जिसमें उसे और अमीर बन जाने का अवसर मिल जाता है। पंकज सुबीर रचित 'अकाल में उत्सव' याद हो जाता है, जिस उपन्यास में गाँव के किसान सुखाड़ से परेशान हैं तो शहर के छोटे-बड़े अधिकारी उत्सव की तैयारी में मशगूल हैं। आज का समय एक नयी सांस्कृतिक चेतना के घेरे में है, जिसका नाम है- अर्थ संस्कृति। अर्थ संस्कृति इतना अमानवीय है, जहाँ सबकुछ बिकाऊ है। तमाम चीजों को नफे और नुकसान की कसौटी पर तौलने-परखने की कोशिश की जाती है।

बहुत ही करीब से इस कहानी में भारतीय स्त्री के प्रेम का समाजशास्त्र, उसकी परिस्थितिकी, सांस्कृतिक चित्ति, नारी मनोविज्ञान और भारतीय परिवेश में उसकी दुश्चिंताएँ, चरित्र को लेकर नौकरी-पेशा औरतों पर होने वाले आक्षेप आदि का विस्तृत रेखांकन शिवमूर्ति ने किया है। भारतीय समाज-व्यवस्था आज भी स्त्री-स्वावलंबन के अनुरूप नहीं बन पायी है। इससे भिन्न मानवी परिस्थितियाँ किस तरह त्रासद और विडंबनात्मक हो सकती हैं। शिवमूर्ति ने इसे 'तिरिया चरित्तर' नामक कहानी में स्पष्ट दिखाया है। पिता की विकलांगता के कारण और अकेली संतान होने की वजह से विमली को पुरूष-प्रधान भारतीय समाज में स्वावलंबन और व्यक्तित्व-विकास का जो अवसर मिलता है- वह विमला को कीर्ति से अधिक अपकीर्ति ही देते हैं- "कुछ भी हो, लेकिन बदनाम रही है पुतोह मायके में..।"[6] बात-बात में मिथकों को जीने वाला भारतीय समाज सामने खड़ी जिंदगी के भीतर को सच को पहचान नहीं पाता। विमली के साथ घटित उसके ही शातिर ससुर के दुराचार को जानने वाले पाठक के लिए कथाकार द्वारा पुजारी जी के मुख से कहलाई गई यह टिप्पणी एक नया व्यंग्यार्थ खोलती है- एक झटके में ही कथाकार विमली के साथ घट रहे पुरूष आचार को इस पौराणिक प्रसंग का संदर्भ देकर जैसे पूरी सभ्यता को ही प्रश्नांकित कर देता है- "लक्षिमन जीने तो इससे छोटी गलती पर नाक-कान काट लिये थे।"[7] शिवमूर्ति भारतीय स्त्री की दशा-और दिशा को गढ़ने में एक सुचिंतित-पूर्वनियोजित मिथकीय सांस्कृतिक चेतना की पाश्ववर्ती भूमिका की ओर ध्यान दिलाना नहीं भूलते। जब वे ऐसा करते हैं तो वह एक स्तब्ध करने वाला दृष्टिपात होता है और बेधक सच को रेखांकित करने वाले ऐसे सत्य के पास कहानी को दो या तीन पंक्तियों से अधिक वे नहीं ठहरने देते। कुछ वैसे ही जैसे इंजेक्शन लगने के समय डॉक्टर अपने रोगी का ध्यान किसी दूसरी और हटा देते हैं। चाहे 'अकाल दंड' कहानी में बाल ब्रह्मचारी कहे जाने वाले हनुमान जी के मकरध्वज होने वाला प्रसंग हो या लक्षमण द्वारा सुर्पणखा की नाक और कान काट लिये जाने का प्रसंग शिवमूर्ति उनकी पौराणिक व्याख्या से अपनी युगीन असहमति को छिपाना नहीं चाहते। 'कसाईबाड़ा' के अधरंगी की तरह सच बोलने वाली स्त्री पात्र 'मनतोरिया की माई के मुख से व्यवस्था के नियामकों को प्रश्नांकित करा कर भी शिवमूर्ति स्त्री-विरोधी भारतीय समाज और व्यवस्था के पुरूष-चरित्तर को उसकी चरम अन्यायिक परिणति तक पहुँचने देते हैं प्राय: अपने कथा-परिवेश के लिए आंचलिक मानी जाने वाली 'तिरियाचरित्तर' कहानी भी कसाईबाड़ा कहानी की भाँति भारतीय स्त्री के आधुनिकता बोध नकारात्मक पूर्वाग्रहों, सामाजिक, मानसिकता और मनोविज्ञान के सभी आयामों को उद्घाटित करने वाला नाट्य रूपक ही है। विमली की जगह कमला या ईंट भेट्टे की जगह ऑफिस रखा देने से भी कोई विशेष फर्क नहीं पड़ना है। शिवमूर्ति ने विमली को रचा ही इस तरह से है कि वह भारतीय स्त्री-मात्र की पीड़ा का अधिकतम प्रतिनिधित्व कर सके। एक मात्र सच बोलने वाली मनतोरिया का पति जब उसका बाल पकड़कर पंचायत से बाहर ले जाता है तो कहानीकार व्यंग्यात्मक टिप्पणियों का एक भी पल हाथ से बाहर जाने नहीं

देता- "अपने आदमी को क्या कह वह? आदमी तो आदमी हठी हाथी होता है- महावत चाहे कितना ही कमजोर महावत क्यों न हों।"[8] दुराचारी ससुर द्वारा ही पंचायती निर्णय के अनुसार दागे जाने के अवसर पर लेखक पूरे समाज के ही यौन-कुंठित होने की सूचना देता है- "कई नौजबान पतोहू को हाथ-पैर और सिर पकड़ कर लिटा देते हैं। कसकर दबाओं, जो जहाँ पकड़े वही मांसलता का आनंद ले लेना चाहता है। नोचने कसोटने, खींचते दबाते हाथ।"[9] कहानी का अंत करने से पहले एक बार पुन: मिथकीय प्रसंग के बहाने संस्कृति विमर्श की और वापस लौटते हैं- कथाकार। यह याद दिलाना नहीं भूलता कि पुरूषों द्वारा रचे गये शास्त्रों में स्त्री का सही और न्यायिक पक्ष पूरी तरह अनुपस्थित है। तब जब पुजारी जी भारी मन से कहते हैं- तिरिया-चरित्र समझना आसान नहीं, बाबा भरथरी ने झूठ थोड़े कहा है। तिरिया चरित्रम पुरूखष्य भाग्यम..."[10] और उसके पहले सीधे-सीधे कथावाचक 'मैं' यानी लेखकीय टिप्पणी के रूप में इतने दिनों बाद फिर दुहराई जा रही है। महाभारत की कथा-भरी सभा में लाचार औरत की बेइज्जती! इसके कारण भी कोई महाभारत होगा क्या? काहे भाई! ई कोई रानी-महारानी है?"[11]

शिवमूर्ति ने अनेक प्रसिद्ध कहानियों के अतिरिक्त तीन उपन्यासों का सृजन किया। 'त्रिशूल' (1995ई.), 'तर्पण' (2004ई.) और 'आखिरी छलांग' (2008ई.)। यद्यपि शिवमूर्ति ग्राम्य चेतना के बड़े कथाकार हैं, तथापि उनकी रचनाओं में धर्म और संस्कृति का उल्लेख हुआ है।

सांप्रदायिक उन्माद से लेकर सांस्कृतिक समरस्ता तक उनके लेखन में बखूबी उद्घाटित हुआ है। इस नजरिये से उनका उपनास 'त्रिशूल' उल्लेखनीय है। यह उनका प्रथम उपन्यास है, जिसमें हमारे समकाल की एक प्रमुख चिंता का मुखर रूप प्रदान किया गया है। इस उपन्यास में सांप्रदायिकता और जातिवाद की आड़ में घृणित राजनीति करने की मानसिकता बेपर्द हुई है। सव्रविदित है कि जब-जब हमारे देश में सांप्रदायिक दंगे हुए हैं, उसके केन्द्र में ऐसे लोग रहे हैं, जिन्हें न तो अपने देश से प्रेम है और न ही अपने धर्म से। वे अपनी राजनीतिक रोटियाँ सेंकने के लिए हमेशा धार्मिक उन्माद को पैदा किया है। त्रारसद यह है कि इसके शिकार हमेशा आम-आदमी होते हैं जिन्हें अपनी रोजी-रोटी की फिकर होती है। कौन नहीं जनता कि सांप्रदायिकता का जहर मनुष्य के मानवीय पक्ष को दबाकर उसके अंदर की घृणा को जागृत करने का कार्य करता है। यी घृणा मनुष्य-मनुष्य के बीच व्यवधान पैदा कर हमारे वर्तमान को लील लेता है।

'त्रिशूल' में हमारे समय-समय का वर्तमान संकट तथा उससे जन्म लेने वाली दुश्चिंताएँ उजागर हो जाती हैं। प्रस्तुत उपन्यास से एक कथन उद्धत है- "कहाँ से आंरभ करने महमूद की कहानी? वहाँ से जब पुलिस उसे घर से घसीट कर ले जा रही थी...चौराहे पर लाठियों से पीटा जा रही था और मुहल्ले से कोई बचाने के लिए नहीं आ रहा था। या...जब इसी चौराहे पर वे लोग उसकी छाती पर त्रिशूल अड़ाकर मजबूर कर रहे थे, 'बोल साले जै सिरी राम....।"[12] इन पंक्तियों में स्पष्ट देखा जा सकता है कि अपनी राजीनतिक महात्त्वाकांक्षा को साधने की साजिश में, राष्ट्रवाद की आड़ लेकर धर्म-संप्रदाय के बहाने व्यक्ति का धुव्रीकरण कर कुछ लोग किस प्रकार समाज में वैमनस्य घोल देते हैं।

यहाँ यह समझने में कठिनाई नहीं होती कि त्रिशूल महमूद की छाती पर नहीं, बल्कि हमारी सदियों की साझी संस्कृति और सौहार्द्र पर वार करता है। ध्यान से पढ़ा जाय तो उपन्यास की उक्त पंक्तियाँ हमारे समाज की वास्तविकता को रेखांकित करती नजर आती हैं। चाहे वह लोकतांत्रिक मूल्यों के स्खलन का संकट हो या समाज के बची एक व्यक्ति के सिर्फ अपनी पहचान के कारण अकेले पड़ जाने का, या धर्म-संप्रदाय के नाम पर व्यक्ति को लामवंद करने का संकट हो या फिर सांप्रदायिक उन्माद से समूची मानवीयता को रौंद देने का; उसे जड़वत बना देने का कथाकार साफ शब्दों में कहता है कि 'महमूद के रूप में गरीब साधारण मेहनतकश वर्ग के लिए एक ही धर्म है, वह है अपने अस्तित्व को जिंदा रखे रहने का धर्म।' इसी कारण महमूद मस्जिद गिरने की घटना के बाद चाहे, शास्त्री जी के घर कुर्सियों लगाने का कार्यक्रम हो या मिठाई बाँटने का, बड़ी तल्लीनता से उसे अंजाम देता है। उस वक्त वों न हिन्दू होता है और न मुसलमान, वह केवल एक अदना-सा मेहनतकश इंसान होता है- "महमूद को भेजिए। मेरा सिर दर्द से फटा जा रहा है।" "उसे तो शास्त्रीजी ने लड्डू बाँटने के काम में लगा दिया है। मुहल्ले के जिन घरों के लोग उनके यहाँ नहीं पहुँच सके, ऐसे लोगों के घर लड्डू पहुँचाने गया है।"[13]

किन्तु यही महमूद सिर्फ नमाज पढ़ने तथा अपने दर्जी मित्र से बात करने के कारण 'घर का भेदिया' 'दुश्मन' और काफिर बन जाता है- "पुजारी बोला, 'बह पक्का नमाजी है। उसकी दोस्ती मुसलमान गुंडों और लफंगों से हैं। वह उनका भेदिया है। मुहल्ले का भेद देता है।"[14]

उपन्यासकार स्पष्ट करता है कि गरीब मेहनतकश जैसे महमूद, जब संप्रदाय की कट्टरता से नहीं बच पाता, तो दूसरों का क्या?

इस तरह यह उपन्यास सांप्रदायिक उन्माद के दरम्यान तार-तार होते हुए मानवता को रेखांकित करना चाहा है। यह अलग सवाल है कि मुसलमानों ने यहाँ के हिन्दुओं को लूटा, उसकी हत्याएँ कीं, उन्हें अपमानित किया, सताया, पर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि मुसलमानों में कुछ अच्छे लोग भी हुए जो इन्सानियत के नाम पर जीवन भर लड़ते रहे। अमीर खुसरों, मीर, इफवाल, रसखान, रहीम, अकबर, निजामुद्दीन औलिया आदि का नाम अत्यंत सम्मान से लिया जाता है। साथ ही हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि समय के साथ दोनों में सांस्कृतिक सम्मिलन हो गया। भारतीय संस्कृति की समृद्धि में मुसलमानों की भूमिका कमतर नही हैं। यह हमारी साझी विरासत है।

समग्रत: शिवमूर्ति की कहानियों तथा उपन्यासों में धर्म और संस्कृति का उल्लेख अनेक प्रसंगों में हुआ है। इसलिए धर्म और संस्कृति के निकष पर इनके काथा साहित्य का मूल्यांकन सभी चीन है।

निष्कर्ष:

धर्म का मूल अर्थ है- 'धारण करना', जो अनेक विरोधाभासों को अपने भीतर समाविष्ट करने का सामर्थ्य रखता है। साथ ही संस्कृति' संस्कारों का सम्मुच्चय है। शिवमूर्ति एक ऐसे कथाकार हैं जो अपनी तमाम रचनाओं में भारतीय धर्म तथा संस्कृति का का उदात्त वर्णन किया है। 'तिरिया चरित्तर', 'ख्वाजा' ओ मेरे पीर', 'सिरी उपमा जोग', केशर-कस्तूरी' तथा 'कुच्ची का कानून' में इसके कतिपय उदाहरणह मिल जाते हैं। शिवमूर्ति रचित उपन्यास- 'आखिरी छलांग' में ग्रामीण जीवन तथा कृषि संस्कृति का वर्णन किया गया है, जबकि उनके उपन्यास 'त्रिशूल' में हिन्दू-मुस्लिम सांप्रदायिकता का सकारण विवेचना किया गया है।

संदर्भ-ग्रंथ-सूची:

1. संस्कृति के चार अध्याय-रामधारी सिंह दिनकर, राज कमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014ई. पृ. भूमिका-12
2. सृजन का रसायन-शिवमूर्ति, राज कमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991 ई. पृ.-167
3. केशर-कस्तूरी-शिवमूर्ति, पृ.29
4. वही, पृ.-54
5. वही, पृ.-43
6. वही, पृ.-120
7. वही, पृ.-121
8. वही, पृ.-122
9. वही, पृ.-123
10. सृजन का रसायन- शिवमूर्ति, पृ.- 67
11. हंस-अगस्त, 2006, पृ. 109
12. त्रिशूल-शिवमूर्ति, राज कमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997 ई. पृ. 11
13. वही, पृ.-17
14. वही, पृ.-31